ब्रिटिश भारत में गैर-ब्राह्मण और दलित आंदोलन

Avinash Kumar
Assistant Professor & Head
Department of History
Patna College, Patna-800005
Mobile No. 6202393206
E-mail Id: avinashisavailable@gmail.com

उन्नीसवी शताब्दी में नवजागरण और आधुनिक शिक्षा के प्रसार के कारण शूद्रों (निचली जातियों) और अछूतों में अपने मूल अधिकारों के प्रति चेतना आई। जातिप्रथा सामाजिक संस्तरण और उत्पीड़न की एक विधि के रूप में भारतीय सामाजिक संगठन की सबसे अनोखी विशेषता रही है।

चतुर्वर्ण का विभाजन भारत की सबसे प्राचीन सामाजिक संरचना है और लगभग 1000 ईसापूर्व जितना पुरानी है। चतुर्वर्ण में ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा इन तीनों उच्चतर समूहों की सेवा करनेवाले शूद्रों में विभाजित है।
छुआछूत की प्रथा का उदय तीसरी से छठी सदी ईस्वी के बीच किसी समय हुआ जब अछूतों की एक पाँचवी श्रेणी बनी। अछूतों को पंचम, अतिशूद्र या चांडाल आदि नामों से भी जाना जाता था। सामाजिक संगठन के लिए अमूर्त वर्ण-विभाजन से अधिक महत्त्वपूर्ण जातियाँ हैं जिनको अस्पष्ट ढंग से अंग्रेजी में 'कास्ट' कहते हैं। व्यावसायिक समूहों के रूप में जातियों की संख्या आधुनिक भारत में 3,000 से अधिक हैं। जाति की सदस्यता जन्म से निर्धारित होती थी। अंतर्विवाह के कठोर नियमों और खान-पान-सबंधी प्रतिबंधों के द्वारा जाति की विशिष्टता को बनाये रखा गया था। प्रत्येक जाति का एक कर्मकांडी श्रेणीपद है, जो उसके सदस्यों को पूरे समाज को समेटनेवाले एक विस्तृत सोपानक्रम में स्थापित करता है। जाति के श्रेणीक्रम की व्यवस्था मूलतः धार्मिक थी और सामाजिक पद-स्थिति का निर्धारण अकसर शुद्धता और अशुद्धता के पैमाने से होता है। शुद्धता का मूर्त रूप होने के कारण सामाजिक पद-स्थिति में ब्राह्मण सबसे ऊपर है और अशुद्ध माने जाने के कारण अछूत सबसे नीचे हैं। श्रेणीक्रम के मध्य में शुद्धता/अशुद्धता की भिन्न-भिन्न जातियाँ होती हैं।

सामाजिक व्यवस्था के अंदर हर जाति के सदस्य के लिए एक धर्म (नैतिक आचरण संहिता) निर्धारित है, जिसका पालन या उल्लंघन (कर्म) अगले जन्म में जाति-व्यवस्था के सोपानक्रम में उनकी स्थिति को निर्धारित करता है। जातियों का सोपान कठोर एवं अपरिवर्तनीय है, किंतु कभी-कभी जातियाँ अपने से परंपरागत रूप से श्रेष्ठ जातियों के रीति-रिवाज एवं विधि-विशेष अपनाकार स्वयं भी श्रेष्ठता का दावा करती रही हैं।

ब्रिटिश काल में ऊँची जातियों ने अंग्रेजी शिक्षा और नये व्यवसायों को अपनाकर अपनी स्थिति को और सुदृढ़ कर लिया। ब्रिटिश काल में नये आर्थिक स्रोतों की उपलब्धता, नई शिक्षा प्रणाली एवं अनुकरण की प्रवृत्ति के कारण मध्यम और अछूत जातियों में जागरूकता आई। पश्चिमी विद्वानों ने हिंदू धर्मशास्त्रों का अध्ययनकर बताया कि गौर वर्णवाली ऊँची जातियाँ आक्रामक आर्यो की संतानें हैं, जबकि साँवले रंगवाली निचली जातियाँ इस देश के अनार्य मूलनिवासी हैं। आधुनिक ब्राह्मणों ने अपने-आपको गोरी चमड़ीवाले विजेताओं के समकक्ष स्थापित किया और काली चमड़ी की नीची जतियों पर अपनी श्रेष्ठता को थोप दिया। फुले और पेरियार जैसे सुधारवादियों ने ब्राह्मणों को आक्रमणकारी तथा अन्य निम्न जातियों को भारत का मूलनिवासी घोषित किया।

जातिगत संगठनों का उदय

उन्नीसवी सदी के स्वयंसेवी जाति संगठनों का उदय हुआ। उपनिवेशी सरकार की नीतियों और फुले जैसे सुधारकों के प्रयास से निचली जातियों और अछूतों में अपने अधिकारों के प्रति चेतना आई। निचली जातियों और अछूतों

ने ब्राह्मण-वर्चस्व का विरोध किया और अपनी जाति के दर्जे को और ऊँचा उठाने के लिए श्रेष्ठ जातियों के रीति-रिवाज एवं विधि-विशेष अपनाने का प्रयास किये, जिसे '**संस्कृतीकरण**' कहा गया है।

ऊर्ध्वमुखी गतिशील जाति समूहों ने ऊँची जातियों के सांस्कृतिक और कर्मकांडी तौर-तरीकों को अपनाकर अपनी नई स्थिति को वैध बनाने के प्रयास किया। ब्रिटिश सरकार की जनगणना में मझोली जातियों के शिक्षित समूहों ने अपनी-अपनी श्रेष्ठता के दावे के लिए क्षेत्रीय जातीय सभाओं और संगठनों का निर्माण किया। जाति संगठनों ने जाति-वर्गीकरण की आधिकारिक योजना में और ऊँचे कर्मकांडी श्रेणीपद पाने के लिए दावे किये। पश्चिमी और दक्षिणी भारत में गैर-ब्राह्मणों और दलितों के आंदोलनों ने सामाजिक संगठन के आधार को चुनौती दी। सामाजिक संतुलन बनाने के लिए ब्रिटिश सरकार ने अछूतों के लिए सुरक्षात्मक भेदभाव की नीति आरंभ की। ब्रिटिश सरकार ने दलित वर्ग के लिए शिक्षा और रोजगार में विशेष आरक्षण के साथ-साथ विधायिकाओं में विशेष प्रतिनिधित्व का प्रावधान किया। जातिगत आंदोलनों में सबसे प्रभावशाली आंदोलन मंझोली जातियों (शूद्रों) में थे जो जाति-सोपान में ऊपर की परजीवी जातियों के नीचे और शोषित अछूतों के ऊपर थे।

पश्चिमी भारत (महाराष्ट्र)

ज्योतिबा फुले का जन्म महाराष्ट्र के एक माली परिवार में हुआ थे। ज्योतिबा फुले (1827-1890) का मानना था कि शूद्र और अति-शूद्र जातियों की बदहाली का कारण ब्राह्मणों का प्रभुत्व और एकाधिकार है। ज्योतिबा फुले का तर्क था कि ब्राह्मण उन विदेशी आर्यो की संतान हैं, जिन्होंने इस देश के मूल निवासियों को गुलाम बनाया है। ज्योतिबा ने ब्राह्मण-वर्चस्व विरुद्ध निचली जातियों और दलित समूहों को एक साझे आंदोलन में एकजुट किया। ज्योतिबा फुले ने 'गुलामगीरी' नामक पुस्तक लिखी। ज्योतिबा फुले ने 24 सितम्बर 1873 को 'सत्यशोधक समाज' की स्थापना की। सत्यशोधक समाज का लक्ष्य वंचक ब्राह्मणों एवं उनके अवसरवादी शास्त्रों से निम्न जातियों की रक्षा करना था। सत्यशोधक समाज ने दलितों और निचली जातियों का आह्वान किया कि वे अपने पारिवारिक उत्सवों और समारोहों में ब्राह्मण पुरोहितों की सहायता न लें और उनका पूर्ण बहिष्कार करें।

फुले ने 1878 में एक शूद्र राजा के रूप में शिवाजी पर एक गाथा-काव्य लिखा, जिससे गैर-ब्राह्मणों में शिवाजी की एक अलग छवि बनी। फुले के शिवाजी ऐसे विद्रोही थे जिन्होंने जाति व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह किया था। तिलक या रानाडे के शिवाजी मुसलमान-विरोधी थे, जो गुरु रामदास की प्रेरणा से गौ और ब्राह्मणों की रक्षा में तत्पर रहते थे। 1888 के बाद फूले ने ब्राह्मणों के प्रभुत्ववाली पूना सार्वजनिक सभा के प्रत्युत्तर में मराठा और कुनबी-किसानों की एकजुटता पर अधिक बल दिया। ज्योतिबा फुले ने क्षत्रियों को मराठों का पूर्वज बताया, जो शूद्रों के साथ मिल-जुलकर रहते थे और आर्यो के हमले का सामना करने में उनके सहायक थे। 1892 के बाद महारों और माँगों जैसी जातियों को सैन्य-सेवा से बाहर रखा जाने लगा।

दक्षिण भारत

दक्षिण भारत में ब्राह्मण-वर्चस्व के प्रति असंतोष के कारण गैर-ब्राह्मण आंदोलन का उदय हुआ। मद्रास में ब्रिटिश शासकों ने ब्राह्मण प्रभुत्ववाली कांग्रेस को प्रति-संतुलित करने के लिए गैर-ब्राह्मणवादी आंदोलन को प्रोत्साहन दिया। मद्रास प्रेसीडेंसी की कुल जनसंख्या में केवल 3.2 प्रतिशत ब्राह्मण थे, लेकिन शिक्षा एवं सेवाओं पर उनका असंदिग्ध एकाधिकार था। ब्राह्मण-वर्चस्व के विरोध में 1840 में ही सलेम के 32 पंचलारों ने आवाज उठाई थी कि समस्त महत्त्वपूर्ण सरकारी पद ब्राह्मणों को ही क्यों दिये जा रहे है? मद्रास में 1892 में ब्राह्मण-वर्चस्व का विरोध करने के लिए प्रजातांत्रिक आधार पर मद्रास समाज-सुधार संघ की स्थापना हुई थी।

अंग्रेजों ने पहली बार विचारधारा प्रस्तुत की कि "तमिल ब्राह्मण एलियन आर्य हैं जिसने एक प्राचीन और स्वायत द्रविड़ परंपरा को अधीन करने में मदद की है।" गैर-ब्राह्मणों ने मद्रास असेंबली में गैर-ब्राह्मणों के लिए ज्यादा सीटों की माँग की। उत्तरी और पूर्वी भारत में बीसवी सदी के पहले दशक से ही जातिगत समितियाँ बनने लगी थी। कायस्थों ने अंतर्प्रांतीय व्यवसायिक संबंधों के कारण 1900 तक अपनी एक अखिल भारतीय समिति बना ली थी और इलाहाबाद से एक अखबार '**कायस्थ समाचार**' भी निकालने लगे थे। बंगाल में कुछेक जमीदारों एवं कलकत्ता के वकीलों के नेतृत्व में मिदनापुर के कैवर्त अपने-आपको महिष्य कहने लगे थे। महिष्य स्थानीय रूप से प्रभुतासंपन्न जाति के थे जिसमें छोटे जमीदारों और मोतबर किसानों के साथ ही गरीब लोग भी थे। महिष्यों ने 1997 में एक जाति-निर्धरिणी सभा स्थापित की। 1901 की जनगणना के दौरान महिष्यों ने केंद्रीय महिष्य समिति की स्थापना की।

जातिगत समितियों ने महाराष्ट्र और दक्षिण भारत में अधिक सामाजिक और राजनीतिक महत्व प्राप्त किया। महाराष्ट्र और दक्षिण भारत में ब्राह्मणों का स्पष्ट आधिपत्य था और जातिगत कट्टरता भी अधिक थी। महाराष्ट्र में जातीय आंदोलन में दो समानांतर प्रवृत्तियों का विकास हुआ- अभिजात समूहों पर आधारित रूढ़िवादी प्रवृत्ति एवं सच्चा जन-आधारित उग्रपरिवर्तनवाद। दूसरी प्रवृत्ति जाति सोपान में ऊंचे स्थान का दावा करने के बजाय जातिप्रथा का ही विरोध करती थी। महाराष्ट्र में जातीय आंदोलन की दूसरी प्रवृत्ति 'बहुजन समाज' की ओर से शेटजी-भटजी (साहूकार और ब्राह्मण) के विरुद्ध प्रचार करती थी।

मुकुंदराव पाटिल के नेतृत्व में सत्यशोधक समाज ने महाराष्ट्र, दकन एवं विदर्भ-नागर के क्षेत्र में अपना एक अनूठा स्थान बनाया था। पाटिल ने 1910 में सत्यशोधक समाज का मुखपत्र 'दीनमित्र' निकालना आरंभ किया था। सत्यशोधक समाज ने ग्रामीण क्षेत्रों में अपना संदेश पहुंचाने के लिए पारंपरिक लोकनाट्य या तमाशे का अपने ढ़ंग से प्रयोग किया। सत्यशोधक समाज के प्रचार में अकसर ऐसे गीत गाये जाते थे, जिनमें राम द्वारा अछूत बालक शंबूक की हत्या पर शोक प्रकट किया जाता था। सत्यशोधक समाज ने 'बालि-राज' की प्राचीन मराठा किसान परंपरा को भी पुनर्जीवित किया। सतारा में 1919-21 में स्थानीय सत्यशोधक नेताओं के नेतृत्व में किसान विद्रोह हुआ। महाराष्ट्र का जातीय आंदोलन 1930 के दशक में गांधीवादी कांग्रेस में समा गया।

दक्षिण भारत में मैसूर रियासत में 1918 में 65 प्रतिशत राजपत्रित पदों पर ब्राह्मणों का अधिकार था। ब्राह्मण मुख्यतः शहरी और कुल जनसंख्या का 3.8 प्रतिशत थे। दक्षिण भारत में 1905-06 मे एक लिंगायत एजुकेशन फंड एसोसिएशन एवं एक वोक्कालिंगा संघ की स्थापना हुई थी। दक्षिण भारत में गैर-ब्राह्मण संस्था के रूप में स्थापित लिंगायत और वोक्कालिंगा ने सामाजिक-राजनीतिक अधिकारों के साथ-साथ सरकारी नौकरियों में सहूलियतों की माँग की। मद्रास के एक गैर-ब्राह्मण राजनीतिज्ञ और मैसूर कॉलेज में अध्यापक सी.आर. रेड्डी ने 1917 में एक ब्राह्मण-विरोधी राजनीतिक संगठन **प्रजा-मित्रमंडली** की स्थापना की।

त्रावनकोर की मध्यवर्गीय जाति नायर ने नंबूदरी ब्राह्मणों और गैर-मलयाली ब्राह्मणों (तमिल व मराठी) के राजनैतिक और सामाजिक प्रभुत्व के विरुद्ध प्रबल आंदोलन किया। दक्षिण में नंबूदरी ब्राह्मणों का एक छोटा-सा वर्ग (कुल जनसंख्या का 1 प्रतिशत से भी कम) था जो भूमिहीन मजदूरों का शोषण करता थे, और अछूतों को मंदिरों में आने से रोकता था। गैर-मलयाली (मराठी देशस्थ अथवा तमिल मूल के) ब्राह्मणों को भी रियासत में विशेष सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। गैर-मलयाली (मराठी देशस्थ अथवा तमिल मूल के) ब्राह्मणों के पास 1891 में उतने ही प्रशासनिक पद थे जितने कि स्थानीय नायरों के पास, जबकि नायरों की संख्या 28,000 गैर-मलयाली ब्राह्मणों की तुलना में 5,00,000 थी। नायरों को नंबूदरी अतिथियों के सामने नायर स्त्रियों के छाती खोले रहने और उनके साथ अस्थायी यौन-संबंध बनाने की प्रथा

लज्जाजनक लगती थी । केरल के प्रथम आधुनिक उपन्यास चंद्रमेननकृत **'इंदुलेखा'** (1889) में नंबूदरी ब्राह्मणों के सामाजिक प्रभुत्व एवं तरावाड प्रथा पर हमला किया गया है।

सी.वी. रामन पिल्लई के ऐतिहासिक उपन्यास **'मार्तंड वर्मा'** में नायरों के खोये हुए सैन्य-गौरव को आह्वान करने का प्रयास है। सी.बी. रमन पिल्लै ने 1891 में **मलयाली मेमोरियल** बनाया और सरकारी नौकरियों में ब्राह्मणों के प्रभुत्व का विरोध किया। रामकृष्ण पिल्लई ने 1906 से 1910 तक **'स्वदेशाभिमानी'** का संपादन किया। पद्मनाभ पिल्लई ने 1914 में **नायर सर्विस सोसायटी** की स्थापना की।

जस्टिस आंदोलन

जस्टिस आंदोलन का आरंभ 1916 में एक गैर-ब्राह्मण घोषणापत्र के प्रकाशन और गैर-ब्राह्मणों की एक औपचारिक राजनीतिक पार्टी के रूप में हुआ था। मद्रास में मंझोली जातियों की ओर से सी.एन. मुदालियर, टी.एम. नायर और सी.पी. त्यागराज चेट्टियार ने दक्षिण में पहली गैर-ब्राह्मण संस्था साउथ इंडियन लिबरल एसोसिएशन (दक्षिण भारतीय उदारवादी संघ) स्थापना की, जिसे बाद में जस्टिस पार्टी के नाम से जाना जाने लगा। मद्रास प्रेसीडेंसी में ब्राह्मण कुल जनसंख्या का केवल 3.2 प्रतिशत थे, लेकिन 1912 में 55 प्रतिशत डिप्टी कलेक्टर और 72.6 प्रतिशत जिला मुंसिफ ब्राह्मण ही थे। जस्टिस पार्टी मुख्यतः धनी भूस्वामियों और शहरी मध्यवर्गीय गैर-ब्राह्मणों से, जैसे तमिल वेल्लालों, तेलुगू रेड्डियों या कापुओं और कम्माओं, मलयाली नायरों और पूरे दक्षिण भारत में फैले बेरी चेट्टियों और बलीजा नायडुओं जैसे व्यापारियों से संरक्षण पानेवाला आंदोलन था। एनीबेसेंट के ब्राह्मण-प्रधान होमरूल लीग आंदोलन के दौरान मद्रास सरकार ने जस्टिस पार्टी से मित्रता की। जस्टिस पार्टी ने 20 दिसंबर 1916 के अपने गैर-ब्राह्मण घोषणापत्र में ऐसी किसी भी बात के प्रति विरोध प्रकट किया था "जो अंग्रेज शासकों के सत्ताधिकार को किसी भी प्रकार ठेस पहुँचाने का प्रयास करे। जस्टिस पार्टी ने कांग्रेस का विरोध एक ब्राह्मण प्रभुत्ववाला संगठन कहकर किया। जस्टिस पार्टी ने गैर-ब्राह्मणों के लिए वैसे ही सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व का दावा किया, जैसा मॉर्ले-मिंटो सुधार ने मुसलमानों को दिया था।

जस्टिस पार्टी की माँग को 1919 के मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार ने स्वीकार कर लिया, जिसके परिणामस्वरूप मद्रास की विधायिका में गैर-ब्राह्मणों के लिए 28 सीटें आरक्षित हुईं। जस्टिस पार्टी ने 1920 के चुनाव में 98 निर्वाचित सीटों में से 63 सीटें जीत ली। 1920 में मंत्रिमंडल का गठन जस्टिस पार्टी के जीवन का चरम बिंदु और साथ ही उसके अंत का आरंभ भी था। मद्रास की गैर-ब्राह्मण जस्टिस पार्टी खुलेआम राजभक्त थी और उसने अंग्रेजों की दृष्टि से उस प्रांत में द्विशासन को सफल बनाया। गैर-ब्राह्मणों की ओर से 1917 में राष्ट्रीयता-समर्थक मद्रास प्रेसीडेंसी एसोसिएशन की स्थापना हुई। प्रेसीडेंसी एसोसिएशन ने भी अलग प्रतिनिधित्व की माँग की। 1920 के दशक के अंत में तमिलनाडु में ई.वी. रामास्वामी नायकर के नेतृत्व में एक जुझारू एवं लोकप्रिय ब्राह्मण-विरोधी एवं जाति-विरोधी आंदोलन का विकास हुआ। महाराष्ट्र में भास्करराव जाधव की गैर-ब्राह्मण पार्टी कांग्रेस की कट्टर शत्रु थी और इसका आरोप था कि कांग्रेस ब्राह्मणों की महत्वाकांक्षाओं को ढ़कने का मुखौटा है। महाराष्ट्र में 1919-21 में सत्यशोधक समाज के ग्रामीण आंदोलनकारियों ने सतारा जिले में जमींदार और महाजन-विरोधी आंदोलन चलाया। 1920 के मध्य दशक से केशवराव जेढ़े और दिनकरराव जवालकर पूना से एक नये प्रकार से गैर-ब्राह्मण आंदोलन का नेतृत्व किया। 1942 तक सतारा बंबई में राष्ट्रवाद का सबसे दृढ़ दुर्ग बन गया। बिहार सरकार की एक रिपोर्ट के अनुसार मई 1925 में बिहार के पटना, मुंगेर, दरभंगा और मुजफरपुर के ग्वाले अथवा यादव भी अपनी जाति के सामाजिक दर्जे के उत्थान के लिए आंदोलन कर रहे थे।

ई.वी. रामास्वामी नायकर

बीसवी सदी के तीसरे दशक में दक्षिण भारत में गैर-ब्राह्मण आंदोलन के मुख्य शिल्पी ई.वी. रामास्वामी नायकर 'पेरियार' (1879-1973) थे। रामास्वामी नायकर कभी असहयोग कार्यक्रम के उत्साही प्रचारक थे। रामास्वामी नायकर ने

1925 में इसलिए कांग्रेस छोड़ दी कि वह गैर-ब्राह्मणों को वास्तविक नागरिकता प्रदान करने में न समर्थ थी, न इसकी इच्छुक थी। रामास्वामी नायकर 1927 में गांधीजी की मद्रास-यात्रा के दौरान उनके ब्राह्मण-समर्थक और वर्णाश्रम धर्म-समर्थक उद्गारों से नाराज हो गये। नायकर ने गांधीवादी राष्ट्रवाद की व्याख्या, भारतीय समाज में ब्राह्मणों तथा ब्राह्मणवाद के प्रभुत्व को बनाये रखने वाली परियोजना के रूप में की। रामास्वामी नायकर की विचारधारा द्रविड़ प्राचीनता और तमिल भाषा व संस्कृति पर गर्व की भावना पर केंद्रित थी। रामास्वामी की पत्रिका **'कुडी आरसू'** (1924) में धारा-प्रवाह तमिल का प्रयोग होता था। रामास्वामी ने 1920 के दशक में **'आत्म-सम्मान आंदोलन'** चलाया।

रामास्वामी ने संस्कृत भाषा और साहित्य को दक्षिण के आर्य उपनिवेशीकरण के सांस्कृतिक प्रतीक मानकर इन पर कड़ा प्रहार किया रामास्वामी ने आर्यवाद, ब्राह्मणवाद और हिंदू धर्म की कड़ी ओलाचना की। रामास्वामी पेरियार ने प्रचलित रूढ़ियों तथा हिंदू धर्म की आस्थाओं, मान्यताओं और विचारों को चुनौती दिया और वेदों और धर्मशास्त्रों में वर्णित दलित-विरोधी आलेखों को पूरे दक्षिण भारत में प्रचारित किया। हिंदू धर्म के बारे में रामास्वामी का मत था कि 'कुछ ऐसे तत्त्व होते हैं जिनका सुधार नही हो सकता, उनका केवल अंत ही करना होता है। ब्राह्मणीय हिंदू धर्म एक ऐसा ही तत्त्व है।' रामास्वामी नायकर ने रामास्वामी कहा कि हिंदू धर्म ब्राह्मणों के नियंत्रणों का एक साधन है और मनु का विधान अमानुषी तथा पुराण परियों की कथाएँ हैं। रामास्वामी नायकर के अनुसार हिंदुओं का कोई भी देवी-देवता वैध संतान नही है। रामास्वामी नायकर ने होटलों के नामपट्टों पर लिखे जातिसूचक शब्दों को तारकोल से मिटाने का प्रयास किया। रामास्वामी नायकर ने ब्राह्मणों के यज्ञोपवीत को तोड़ा, देवी-देवताओं की मूर्तियों को चप्पलों से पीटा।

रामास्वामी नायकर ने **'रामायणः ए ट्रू रीडिंग'** ग्रंथ लिखकर रामायण की कथा को पलटकर रावण को आदर्श द्रविड़ और राम को दुष्ट आर्य बना दिया। रामास्वामी नायकर पेरियार नये युग के पैगंबर, दक्षिण पूर्व एशिया के सुकरात, समाज-सुधार आंदोलन के जनक तथा अज्ञान, अन्धविश्वास, निरर्थक रिवाजों और निराधार आचारों के कट्टर शत्रु थे। रामास्वामी नायकर के अनुयायी उन्हें 'तंतै' (पिता) तथा **'पेरियार'** (महान् आत्मा) के नाम से पुकारते थे। रामास्वामी नायकर के आत्मसम्मान आंदोलन ने ज्योति तास और एम. मसिलमणि जैसे आदि-द्रविड़ बुद्धिजीवियों की पहले की रचनाओं से भी प्रेरणा ली। मद्रास में गैर-ब्राह्मण आंदोलन ने धीरे-धीरे एक मुखर तमिल क्षेत्रीय अलगाववाद का रूप ग्रहण किया।

1937 में सी. राजगोपालाचारी के नेतृत्व में कांग्रेस ने मद्रास प्रांत के स्कूलों में हिंदी को एक अनिवार्य विषय बनाने का प्रस्ताव रखा। हिंदी को तमिल भाषा और उसे बोलनेवालों को नष्ट करने के प्रयास करनेवाली एक अशुभ शक्ति मानकर इसके विरोध में मद्रास नगर में प्रदर्शन हुए। अगस्त 1944 में रामास्वामी जस्टिस पार्टी के अध्यक्ष बने। रामास्वामी ने जस्टिस पार्टी का नाम बदलकर द्रविड़ कजगम कर दिया, जिसका प्रमुख उद्देश्य एक अलग गैर-ब्राह्मण (राज्य) या द्रविड़नाडु की माँग को पूरा कराना था। नायकर के अनुयायी सी.एन. अन्नदुरै (1909-1963) ने द्रविड़ आंदोलन को आगे बढ़ाया, जो तंतुवाय जाति से थे।

दलित-आंदोलन

उन्नीसवी सदी के अंतिम और बीसवी सदी के आरंभिक वर्षों में ईसाई मिशनरी का दलितों के बीच काम करने और उपनिवेशी सरकार द्वारा शिक्षा के प्रसार से दलित वर्गों में एक छोटा-सा शिक्षित कुलीन समूह पैदा हुआ। ईसाइयत स्वीकार करना जातिप्रथा के प्रतिरोध का एक ढंग था और दक्षिण भारत के कुछ भागों में दलितों ने बड़ी संख्या में इस तरीके का सहारा लिया। मिशनरियों ने और नई शिक्षा ने दलितों में आत्मसम्मान का भाव पैदा किया।

सतनामी आंदोलन

छत्तीसगढ़ का सतनामी आंदोलन जातिगत संगठन की दिशा में एक अनूठा प्रयास था। सतनामी आंदोलन के जन्मदाता अठारहवी सदी के गुरु घासीदास (1756-1800) थे जो चमार जाति के थे। सतनामी आंदोलन चमार जाति की

सामूहिक प्रगति एवं कुरीतियों पर विजय करनेवाला आंदोलन था। सतनामी संप्रदाय ने संभवतः कबीरपंथी मत से एक संप्रदाय का आदर्श रूप ग्रहण किया था। सतनामी आंदोलन के पहले जगजीवनदास ने उत्तर भारत में इसी प्रकार का मत चलाया था। सतनामी आंदोलन के गुरु घासीदास ने कई वर्णों में बाँटनेवाली जाति-व्यवस्था का विरोध किया। गुरु घासीदास ने अपने अनुयायियों को शराब, तंबाकू, माँस, और लाल रंग की सब्जियों का प्रयोग निषिद्ध कर दिया। गुरु घासीदास ने संदेश दिया कि "मानव की एक ही जाति, मानव जाति है और मानव का एक ही धर्म, सत्धर्म है। गुरु घासीदास के उपदेश और धार्मिक अनुष्ठान चमार जाति की कुछ सीधी-साधी धार्मिक परंपराओं में आज भी प्रचलित हैं। उत्तर प्रदेश के जौनपुर जिले के माधौपुर गाँव के चमार (जो अधिकांशतः काश्तकार या भूमिहीन श्रमिक होते थे) शिवनारायण संप्रदाय के उपदेशों से शांति पाते थे और ब्राह्मणों के आचारों (जैसे गोमांस न खाना) का अनुसरण कर अपनी सामाजिक स्थिति को ऊंचा उठाने का प्रयास करतं थे।

महार आंदोलन

महाराष्ट्र की महार जाति गोपालबाबा वलंगकर और शिवराम जानबा कामले जैसे सुधारकों के नेतृत्व में संगठित होने ली थी। गोपालबाबा वलंगकर का मानना था कि महारों को पुलिस और सेना में भर्ती किया जाना चाहिए। वलंगकर ने 1894 में एक याचिका के माध्यम से महाराष्ट्र के महारों को 'क्षत्रिय' घोषित करने और सेना में भर्ती करने की माँग की।बशिवराम जानबा कामले ने 1904 में सोमवंशीय हित-चिंतक मित्र समाज नामक संस्था की स्थापना की। शिवराम जानबा कामले ने अपनी मासिक पत्रिका सोमवंशीय मित्र (1908-1910) में एक देवदासी शिबूबाई लक्ष्मण जाधव का पत्र प्रकाशितकर देवदासियों के अंधकार भरे जीवन से लोगों को परिचित कराया। महारों की स्थिति सुधारने के लिए कामले ने महारों को पुलिस और सेना में भर्ती किये जाने की माँग की।
वलंगकर और कामले की के प्रयास से 6 फरवरी 1917 से ब्रिटिश सेना में महारों की भर्ती होने लगी।

नाम शूद्र आंदोलन

बंगाल के 'चंडाल' जाति में पैदा हुए **चाँदगुरु** (1850-1930) ने विद्यालय खोलकर अछूतों को शिक्षित किया। बंगाल में 1899 में जाति-निर्धारण सभा की स्थापना की गई और चंडालों को 'नाम शूद्र' नाम दिया गया। नाम शूद्र गरीब अछूत किसान थे जो दूरस्थ अंग्रेज आका की अपेक्षा अपना शोषण करने वाले उच्चवर्गीय भद्रलोक को ही अपना शत्रु समझते थे। 1901 बाद एक छोटे-से समूह ने मिशनरियों के प्रोत्साहन से नाम शूद्रों की जातिगत समितियाँ गठित की। 1901 बाद **'नाम शूद्र'**, **'पताका'** और **'नाम शूद्र हितैषी'** जैसी पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगी थी।

नाडार आंदोलन

दक्षिणी तमिलनाडु अछूत 'शनार' ताड़ी निकालने का काम करते थे। उन्नीसवी सदी के अंत में रामनाड जिले के कस्बों में शनार जाति के समृद्ध व्यापारियों के एक समूह का उदय हुआ जिसने अपने-आपको नाडार (क्षत्रिय) घोषित कर ऊंची जाति के रीति-रिवाजों और आचार-व्यवहार को अपनाया। समृद्ध शनार व्यापारियों समूह ने 1910 में **'नाडार महाजन संगम'** की स्थापना की। उत्तर तमिलनाडु में निम्न जाति के पल्ली 1871 में अपने-आपको क्षत्रिय जाति में रखना आरंभ किये। निम्न जाति के पल्ली अपने को **'बनियाकुल क्षत्रिय'** कहते थे और उच्च जातियों के रीति-रिवाजों, जैसे-विधवा पुनर्विवाह का निषेध आदि का आचरण करते थे।

इझवा जागरण

मलाबार, कोचीन और ट्रावनकोर में इझवा या इलवान (इलवाज) एक पारंपरिक अछूत जाति थे जो नारियल की खेती करते थे। इझवा जागरण के नेता श्री नारायण गुरु (1854-1928) थे। केरल के इझवा लोग श्री नारायण गुरु (नानु असन) के नेतृत्व में ब्राह्मणों के प्रभुत्व के विरुद्ध संघर्ष किये। इझवा लोग श्री नारायण गुरु (नानु असन) के नेतृत्व में मंदिरों

में प्रवेश करने और अपने कुछेक रिवाजों के 'संस्कृतीकरण' की माँग किये। श्री नारायण गुरु (1854-1928) ने 1902 में प्रथम इझवा स्नातक डॉ. पल्पू. और महान् मलयाली कवि एन. कुमारन आशान के साथ श्री नारायण धर्म परिपालन योगम् (एस.एन.डी.पी.वाई.) की स्थापना की। श्री नारायण धर्म परिपालन योगम् के दो प्रमुख उद्देश्य थे- एक तो अस्पृश्यता को समाप्त करना और दूसरे पूजा, विवाह आदि को सरल बनाना।

नारायण गुरु ने चंगाराम कुमारथ कृष्णन जैसे लोगों के सहयोग से अवर्णों के लिए आरविपुरम् जैसे कई मंदिरों का निर्माण करवाया। नारायण गुरु ने दैत्य-पूजा सहित विभिन्न देवी-देवताओं की पूजा को बंद करवाया।
नारायण गुरु ने इझवा लोगों को ताड़ी का व्यवसाय बंद करने, साफ-सफाई से रहने और गंदे कामों को छोड़कर उच्च जातियों के रीति-रिवाजों को अपनाने का आह्वान किया। नारायण गुरु की सलाह पर ही गांधीजी ने अपने अखबार '**नवजीवन**' का नाम बदलकर '**हरिजन**' किया था और दलित जातियों को '**हरिजन**' नाम दिया था। नारायण गुरु के अनुयायी डॉ. पल्पू और टी.के. माधवन ने 1920 में 'श्री नारायण धर्म परिपालन योगम्' को गांधीवाद से जोड़ दिया।

पंजाब का आदि-धर्म आंदोलन

बीसवी सदी के तीसरे दशक में विभाजनपूर्व के पंजाब की निचली और अछूत जातियों में आदि धर्म आंदोलन हुआ। आदि धर्म आंदोलन में पंजाब की दो बड़ी अछूत जातियाँ- चमार (चर्मकार) और चूहड़ा (सफाई कर्मचारी) शामिल थी। आदि धर्म आंदोलन के नेता आरंभ में आर्यसमाजी थे, जो बाद में दक्षिण के रामास्वामी नायकर के आत्मसम्मान आंदोलन से प्रभावित होकर उन्ही का अनुकरण करने लगे थे। दक्षिण के आदि-आंदोलनों की तरह आदि धर्म आंदोलन के नेताओं ने प्रचारित किया कि वे ही भारत के आदि मूलनिवासी हैं और उनकी अपनी धार्मिक मान्यताएं हैं, बाद में ब्राह्मणों ने उन पर हिंदू धर्म बलात् थोप दिया है। आदि धर्म आंदोलन आर्थिक, शैक्षिक, सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों का बहुआयामी आंदोलन था। आदि धर्म आंदोलन आंदोलन के कार्यकत्ता प्रायः बैठकों के बाद एक साथ गाँव या नगर के तालाब पर जाते थे और स्नान करके उच्च हिंदू जातियों द्वारा उस परंपरागत प्रतिबंध को तोड़ते थे कि अछूत वहाँ पानी नही भर सकते।

आदिधर्मियों ने सार्वजनिक कुँओं व तालाबों के पानी का उपयोग करने, हिंदू जमीदारों की तरह समान भूमि अधिकार दिये जाने, सार्वजनिक जातीय संपत्तियों का उपयोग करने, ऊँची जातियों के अत्याचारों से बचाया जाने और साथ ही अपने बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने की सुविधाएं और अधिकार दिये जाने की माँग की। आदिधर्मियों ने 1931 की जनगणना में अपने को हिंदू की जगह 'आदि-धर्मी' लिखवाया। आर्य समाज ने पंजाब के चमारों और वाल्मीकि समुदाय के लोगों को क्रमशः रमदसिया सिख और मजहबी सिक्ख के नाम पर सिख समुदाय में शामिल किया। 1932 के आसपास लाहौर में '**अखिल भारतीय हरिजन लीग**' की स्थापना हुई।

आगरा का जाटव आंदोलन

बीसवी सदी के प्रारंभ से ही उत्तर प्रदेश के आगरा के जाटवों में संस्कृतिकरण की प्रक्रिया आरंभ हो गई थी। 1887 में स्वामी आत्माराम ने **ज्ञान समुद्र** पुस्तक में यह सिद्ध करने का प्रयास किया था कि लोमश रामायण के आधार पर जाटव वंश शिव के गोत्र से संबंधित हैं, इसलिए वे क्षत्रिय हैं। आत्माराम की प्रेरणा से जाटवों में संस्कृतिकरण की भावना का उदय हुआ। जाटवों ने अपनी पहचान में परिवर्तन लाने के लिए 1917 में जाटव वीर महासभा और फिर अखिल भारतीय जाटव सभा का गठन किया। 1920 में जाटवों ने एक बड़ा प्रदर्शन किया, जिसमें करनसिंह नामक जाटव को ऊँची जाति के लोगों ने पीट-पीट कर मार डाला। करनसिंह को जाटव उत्तर भारत का पहला शहीद मानते हैं।

1924 में गठित जाटव प्रचारक मंडल ने जाटवों में शिक्षा के प्रचार-प्रसार पर बल दिया और 1926 में पहला जाटव स्नातक हुआ। जाटव परिषद् और जाटव जनशिक्षा संस्थान ने विद्यालयों और पुस्तकालयों की स्थापना की और

अपने समाज के शिक्षित युवकों के लिए नौकरियों की माँग की। जाटवों ने जातीय सोपान में अपना दर्जे को ऊँचा उठाने के लिए सरकार से माँग की कि उन्हें चमारों से अलग सूची में रखा जाये और जाटव जाति की गणना अलग की जाये। 1930 में जाटव युवक परिषद् ने आंबेडकर को अछूत समाज का नेता मान लिया। 1944-45 में आगरा परिगणित जाति संघ स्थापित हुआ और उसे आंबेडकर के संघ से संबद्ध किया गया।

आदि-हिंदू आंदोलन

फर्रुखाबाद के छिबरामऊ में चमार जाति के स्वामी अछूतानंद (हीरालाल) ने आदि हिंदू आंदोलन चलाया। अछूतानंद ने 1910 में अछूतों में सामाजिक-राजनैतिक चेतना का मंत्र फूंकने के लिए नगरों और गाँवों में संगठन बनाने का प्रयास किया। अछूतानंद ने भेदभावमूलक जातिप्रथा, सामंतवाद, अस्पृश्यता जैसी रूढ़ियों को नष्ट करने का आह्वान किया और केंद्र व राज्य में अछूतों को संख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व दिये जाने की माँग की। स्वामी अछूतानंद का मानना था कि कांग्रेस पर शोषक वर्ग, अस्पृश्यता के परिपोषक सवर्ण हिंदू, दलितों को सतानेवाले मुस्लिम नवाब और हिंदू जमीदार, राजा-महाराजा तथा ब्राह्मणों का आधिपत्य है। स्वामी अछूतानंद का मानना था कि गांधी का अस्पृश्यता-विरोधी आंदोलन भी एक दिखावा है, क्योंकि वे वर्णव्यवस्था के प्रबल पक्षधर हैं। अछूतानंद ने गाँवों में प्रचलित बेगार और बंधुआ मजदूरी का विरोध किया। स्वामी अछूतानंद ने समाज सुधार की दिशा में मृत्युभोज, विवाहों और नाच-तमाशों पर होने वाले अपव्यय को रोकने, मद्यपान को बंद करने एवं देवी-देवताओं की पूजा का तिरस्कार करने की अपील की। स्वामी अछूतानंद ने निम्न जातियों के साथ अंतर्जातीय विवाह की सलाह दी।

कोली-कोरी आंदोलन

पूरे भारत में गुजरात को छोड़कर कोली एक अछूत जाति है। कोलियों में सुधार के लिए 1910 में लाहौर में भारतवर्षीय कोली सुधार सभा स्थापित हुई। भारतवर्षीय कोली सुधार सभा ने शिक्षा और समाज-सुधार पर विशेष बल दिया; बाल-विवाह, दहेज, शराब-माँस के सेवन तथा विवाह, जन्म जैसे उत्सवों पर फिजूलखर्ची को रोकने का प्रयास किया। कोली समाज के लोग अपना दर्जा ऊँचा करने के लिए आर्य, वर्मा, चैधरी आदि उपनाम लगाने लगे। 1935 में लखनऊ में कोरी महासभा और कानपुर में कोरी महापंचायत की स्थापना हुई। बंबई के मेयर रहे बर्लीकर ने पूरे भारत में कोली-कोरी संगठनों को मिलाकर एक राष्ट्रीय गैर-राजनीतिक संगठन अखिल भारतीय कोली समाज संगठित किया। गढ़वाल-कुमायूँ की पहाड़ियों में कोली (शिल्पकार) जाति के बलवंत सिंह 'आर्य' ने अस्पृश्यता तथा जातिवाद के विरुद्ध आवाज उठाई। बलवंत सिंह 'आर्य' के अहिंसात्मक आंदोलन के कारण गांधीजी ने उन्हें 'पहाड़ का गांधी' कहा था।

दलित आंदोलन की विषेषताएं

प्रायः सभी अछूत जातियों ने उच्च कर्मकांडी स्थिति के कुछ गोचर प्रतीकों को सामूहिक रूप से ग्रहण किया। मंदिर-प्रवेश के अनेक संगठित आंदोलनों में मलाबार में 1924-25 का वैकम सत्याग्रह और 1931-33 का गुरुवायूर सत्याग्रह, बंगाल में 1929 का मुंशीगंज काली मंदिर सत्याग्रह और नासिक (पश्चिमी भारत) में 1930-35 का कालाराम मंदिर सत्याग्रह सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। संगठित दलित समूहों ने सवर्ण हिंदुओं से सामाजिक अधिकारों की भी माँग की। कायस्थों ने 1872 में एक नामशूद्र के दाह-संस्कार में भाग लेने से मना किया, तो नामशूद्रों ने छः माह तक कायस्थों की जमीनों पर काम नही किया। महाराष्ट्र में विख्यात नेता डॉ. भीमराव आंबेडकर ने 1927 में 10-15 हजार दलितों के साथ महाड़ में एक सार्वजनिक तालाब से पानी लेने के अधिकार के लिए विशाल सत्याग्रह किया। अछूत जातियों ने अपने अतीत की हानियों की भरपाई करने और अपने सभी सामाजिक अधिकारों को वापस किये जाने की माँग की। छत्तीसगढ़ में चमारों के सतनाम पंथ ने अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए कर्मकांडी प्रतीकों में बदलाव किय। बंगाल के अछूत

हादियों के बलहारी पंथ ने एक विपर्यस्थ (इनवर्टेड) कर्मकांडी सोपानक्रम की कल्पना की, जिसमें अछूत सबसे ऊपर थे और ब्राह्मण सबसे नीचे।